इच्छापत्र

स्वयं विधिशास्त्र के ज्ञाता होते हुए भी कोर्ट-स्टेम्प पर लिखा हुआ पंडित भातखण्डे का कोई इच्छापत्र प्राप्त न होना कुछ लोगों के मत से एक विधि की विडंबना है। परन्तु जिस प्रकार का जीवन उन्होंने व्यतीत किया, जिन ध्येयों की पूर्ति के लिये अपने सर्वस्व को न्योछावर किया, उस पर विचार करते हुए जो कुछ हुआ वह उनकी सभी बातों से मेल खाता हुआ प्रतीत होता है। संगीत सेवा से अर्जित किया हुआ ऐसा कुछ भी उन्होंने अपने लिये उपयोग में नहीं लिया, अर्थात् उत्तरदायित्व किसी को समर्पित करना उनके लिये आवश्यक ही नहीं था। प्रस्तुत इच्छापत्र वास्तव में एक संकलन है। अपने शिष्यों से, मित्रों से, देशवासियों से भविष्य में जो-जो कार्य भी वे पूर्ण करा लेना चाहते थे उन उक्तियों को यहाँ पर उद्धृत किया जा रहा है। हो सकता है, यह सारी उक्तियाँ पाठकों के लिए जानी-पहचानी हों। परन्तु पं० भातखण्डे के अनुभवों के निचोड़ के रूप में इन उक्तियों का बार-बार स्मरण करना संगीत-प्रेमियों के लिये, संगीत-साधकों के लिये और आने वाली पीढ़ी के लिये नितांत आवश्यक समझकर द्विरुक्ति का दोष स्वीकार करते हुए भी उन्हें फिर से एक बार सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" के उद्धरणों के लिये संगीत कार्यालय, हाथरस के प्रकाशनों की सहायता ली गई है।

—सम्पादक

संगीतकलानिधि पं० विष्णु नारायण भातखण्डे का

इच्छापत्र

(१) लक्ष्यसंगीत की अन्तर्वस्तु

प्रिय मित्रो ! मेरा पहले से ऐसा निश्चय था कि प्राचीन एवं अर्वाचीन ग्रंथों का मनन करके उत्तरी सङ्गीत का इतिहास तुम्हारे समक्ष यथा सम्भव स्पष्ट करने तथा उसी प्रकार यथाशक्ति व यथामति तुम्हें जानकारी करा दूँ कि आज उत्तर में तथा महाराष्ट्र में प्रसिद्ध घरानेदार कलावन्त कौन से राग गाते हैं तथा कैसे गाते हैं। मेरे इस संकल्प से तुम परिचित ही हो। मैं समझता हूँ, ईश्वर की कृपा से मेरा संकल्प पर्याप्त मात्रा में सिद्ध हुआ है। तुमने प्राचीन ग्रन्थ सब समझ ही लिये हैं, संभवतः अब ऐसा शायद ही कोई राग हो, जिसे तुम न समझ सको। अपने यहाँ भरत तथा शारङ्गदेव के ग्रन्थों को सङ्गीत का विपुल भण्डार माना जाता है। प्रत्येक नवीन लेखक इन ग्रन्थों के सामने नतमस्तक होकर जो लिखना होता है वह लिखता है। ऐसी प्रवृत्ति आज सर्वत्र देखने में आती है। यद्यपि मैं इन ग्रन्थों के सङ्गीत पर विशेष प्रकाश नहीं डाल सका हूँ, तथापि मेरे कहने का भावार्थ केवल इतना ही है कि उपलब्ध ग्रन्थों में से अनेक ग्रन्थों में क्या कहा गया है, यह तथ्य तुम्हारी समझ में आ जाय। उसी प्रकार प्रचलित सङ्गीत में आज जो अनेक राग हैं, उनको गायक कैसे

गाते हैं तथा उन रागों के सम्बन्ध में उपलब्ध ग्रन्थों में क्या कहा गया है, इसकी भी जानकारी तुम्हें हो चुकी है। भरत-शारङ्गदेव के ग्रन्थों में श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति तथा राग योजना रागरूप देकर बताई गई है। आगे के ग्रन्थकारों को इस योजना का रहस्य बताना चाहिये। कुछ ग्रन्थकारों ने समझ में न आने के कारण अथवा उक्त ग्रन्थों को निरर्थक समझ कर उनकी उपेक्षा करते हुए अपने-अपने ग्रन्थ लिखे हैं, ऐसा स्पष्ट दिखता है। प्रथम बाईस श्रुति परिश्रम से सिद्ध करके, उन पर नियत स्वरान्तरों से ग्राम की शृंखला तैयार करना, बाद में उस शृंखला से विभिन्न मूर्च्छना विभिन्न स्वरों से उत्पन्न करना, उन मूर्च्छनाओं के स्वरान्तरों से भिन्न-भिन्न ग्रहांश के द्वारा जाति पैदा करना तथा जाति से फिर राग उत्पन्न करना। यह सब कृत्य उन ग्रन्थकारों को द्राविड़ी प्राणायाम जान पड़ा हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं। इसकी अपेक्षा षड़जग्राम नामक शुद्ध-स्वर-सप्तक लेकर उसमें आवश्यकतानुसार विकृत-स्वर सम्मिलित करके, उन स्वरों की सहायता से प्रथम मेल तथा उससे राग उत्पन्न करने का जो उपक्रम उन्होंने किया वह अधिक सुविधाजनक तथा तुरन्त समझ में आने योग्य था—ऐसा भी कोई कह सकता है।

भरत-शारङ्गदेव के ग्रन्थ हमारी समझ में आ गये, ऐसा प्रकट करके कुछ आधुनिक पंडितों ने उन ग्रन्थों का स्पष्टीकरण देकर कुछ छोटे-मोटे लेख भी प्रकाशित अवश्य किये हैं। परन्तु उन लेखों से अभी तक किसी पाठक का समाधान नहीं हुआ। समाधान न होने का एक कारण यह कहा जा सकता है कि उन प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुति एक नियत-प्रमाण की थी, दूसरे शब्दों में यह कहें कि उन ग्रन्थकारों की बाईस श्रुतियाँ एक नियत-प्रमाण में एक दूसरे से ऊँची चढ़ती जाती थीं। हमारे आधुनिक विद्वान् यह मानकर चलते हैं कि भरत-शारङ्गदेव के चतुःश्रुतिक, त्रिश्रुतिक तथा द्विश्रुतिक स्वर पाश्चात्य विद्वानों के मेजर, माइनर तथा सेमीटोन समझने चाहिये। भरत-शारङ्गदेव की विचारधारा मैंने तुम्हें समझा ही दी है। तब हमारे विद्वानों के सिद्धान्त पाश्चात्य पाठकों को नहीं जँचे तो कौन-सी आश्चर्य की बात है? अच्छा, इन पाश्चात्यों के स्वरान्तरों से रत्नाकर में वर्णित राग भली प्रकार अलग हो ही जाते हैं, ऐसा कहें तो यह भी नहीं हो सकता। फिर इन विद्वानों की गणित-सिद्ध श्रुतिमालिका लेकर हम क्या करें, यह सहज ही कहने में आता है। मेरी तो उनसे यही प्रार्थना है कि उनको भिन्न-भिन्न स्थानों में अपने आधुनिक वाद्य ले जाकर भरत-शारङ्गदेव के श्रुतिस्वर, ग्राममूर्च्छना का प्रदर्शन करके अज्ञ समाज को समझने की व्यर्थ चेष्टा नहीं करनी चाहिये, बल्कि सीधे रत्नाकर के रागाध्याय की ओर बढ़ना चाहिये तथा उन रागों को उन्हीं ग्रन्थों के वर्णन से व स्वतः शोध किये हुए श्रुति स्वरों से गाया जा सकता है, यह सिद्ध करके दिखाना चाहिये।

यह कार्य कैसे करना चाहिये, इसका मैं यहाँ संक्षेप में वर्णन करता हूँ। सुनिये :— रत्नाकर का पहला "शुद्धसाधारित" नामक राग लें। उसकी व्याख्या शारङ्गदेव इस प्रकार करता है :—

षडजमध्यमया सृष्टस्तारषडजग्रहांशकः।
निगाल्पो मध्यमन्यासः पूर्णः षडजादिमूर्च्छनः।

अवरोहिप्रसन्नान्तालंकृतो रविदैवतः ।
वीररौद्ररसे गेयः प्रहरे वासरादिमे ।।
विनियुक्तो गर्मसंधौ शुद्धसाधारितो बुधैः ।।

यह राग, "षड्जमध्यमा" जाति से उत्पन्न होता है। इस जाति का वर्णन ग्रन्थ में ऐसा है :—

अंशाः सप्त स्वराः षड्जमध्यमायां मिथश्च ते ।
संगच्छन्ते निरल्पोऽशांगाहते वादितां विना ।।
निलोपे निगलोपे च षाडवौडुविते मते ।
षाडवौडुवयोः स्यातां द्विश्रुती तु विरोधिनौ ।।

इस जाति से यह राग अमुक ग्राम का निश्चित होता है। अब हाथ में वीणा लो और तीव्र 'रे, ध, ग' स्वरों में तार मिलाओ। अमुक मूर्च्छना बताई है, अतः चिकारी पर अमुक स्वर मिलाओ। आगे (आवश्यक होने से) अमुक "तानक्रिया" करो। ऐसा करने से जो स्वरपंक्ति उत्पन्न होगी, उसमें अमुक स्वर को ग्रह मानकर जाति उत्पन्न करने से इस राग का स्वरूप ऐसा होगा। आगे स्वरकरण ग्रन्थकार ने दिया ही है, वह इस प्रकार पढ़ना चाहिये। उसमें अवरोही "प्रसन्नांत" अलंकार अमुक है तथा अमुक तरह से गाया जाना चाहिये। सारांश यह कि ग्रन्थकार का "शुद्धसाधारित" राग का अमुक मेल उनका अमुक स्वरूप ऐसा स्पष्ट करके समझाया जाय तथा उनमें अंश स्वर कौन से तथा क्यों हैं, यह भी समझा दिया जाय तो बस पर्याप्त होगा। इस प्रकार से रत्नाकर के रागों का स्पष्टीकरण हो तो पाठकों को उस पर मनन करने में सुविधा होगी तथा टीकाकारों के मुँह स्वतः बन्द हो जायेंगे। रागों का स्पष्टीकरण करने से पूर्व रत्नाकर में वर्णित श्रुतिवीणा का भी स्पष्टीकरण किया जाना वांछनीय है। हमारे आधुनिक विद्वानों को दोषी ठहराने का हमें भी अधिकार नहीं। उन्होंने कुछ मनोरंजक तर्क भी किये हैं, यह हम स्वीकार करते हैं, परन्तु अब केवल तर्कों पर ही सन्तुष्ट न रहकर रत्नाकर के राग उन्हें हाथ में लेने चाहिये, ऐसी हमारी उनसे प्रार्थना है।

मैं अपने संभाषण में सोलह-सत्रह मध्यकालीन ग्रन्थों की विशेष चर्चा कर चुका हूँ। यह तुम्हारे ध्यान में होगा ही। वे ग्रन्थ ये हैं :—

१—राग-तरंगिणी
२—हृदय-कौतुक
३—हृदयप्रकाश
४—संगीत-पारिजात
५—संगीत-राग-तत्वविबोध
६—सद्रागचंद्रोदय
७—रागमंजरी
८—रागमाला
९—अनूपसंगीतविलास
१०—अनूपसंगीतरत्नाकर
११—अनूपांकुश
१२—रसकौमुदी
१३—स्वरमेलकलानिधि
१४—रागविबोध
१५—चतुर्दण्डिप्रकाशिका
१६—सङ्गीतसारामृत
१७—रागलक्षण

प्रचलित संगीत का वर्णन करते समय मैंने लक्ष्यसंगीत, अभिनव-राग-मंजरी, संगीत-सुधाकर, कल्पद्रुमांकुर, संगीतचन्द्रिका ग्रन्थों में जो कहा गया है, उसका भी उल्लेख किया है। देशी भाषा के ग्रन्थ संगीत-कल्पद्रुम, संगीतसार, गीतसूत्रसार, राधागोविन्द-संगीतसार, नगमाते आसफी आदि का भी मैंने अवलोकन किया था। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त संगीत-नारायण, सङ्गीतशिरोमणि, सङ्गीतचूड़ामणि, सङ्गीतसमयसार, नारदसंहिता, सङ्गीतविनोद, सङ्गीतचन्द्रिका, सङ्गीतलक्षणदीपिका आदि ग्रन्थ भी मैंने देखे हैं, परन्तु इन ग्रन्थों में रागरूपों का स्पष्टीकरण न होने से उनकी मैंने विशेष चर्चा नहीं की। मेरी समझ से हिन्दुस्तानी सङ्गीत के प्रत्येक विद्यार्थी को चाहिये कि वह मेरे द्वारा बताये गये इन सत्रह ग्रन्थों का भली प्रकार अध्ययन करें और उसके पश्चात् भरत-शारंगदेव के ग्रन्थों की ओर बढ़ें। उन १७ ग्रन्थों में वर्णित सङ्गीत आज हम गा रहे हैं, यह बात तो नहीं; किन्तु उनकी सहायता से हमारे आज के सङ्गीत पर, उसके इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है। इन ग्रन्थों में से प्रथम बारह ग्रन्थ उत्तर के लिये तथा शेष दक्षिण के लिये उपयोगी हैं, यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। प्रथम पाँच का शुद्ध-मेल "काफी" है तथा शेष सबका शुद्धमेल "कनकांगी" जैसा है।

एक महत्वपूर्ण बात यह है कि ये सभी ग्रन्थकार "मेल व तज्जन्य राग" पद्धति से हमारे रागों का वर्णन करते हैं। अर्थात् वे अपनी-अपनी पद्धति प्रायः बारह स्वरों की सहायता से ही वर्णित करते हैं। उत्तर के ग्रन्थों में से प्रथम पाँच ग्रन्थकारों ने हमारे राग "काफी" सदृश्य शुद्धमेल के आधार पर दिये हैं, यह मैंने कहा ही है। इनमें से अहोबल, हृदय तथा श्रीनिवास इन तीनों ने तो अपने शुद्धमेल के स्वर तार की लम्बाई द्वारा स्पष्ट-रूप से बतलाए हैं, यह तुम जानते ही हो। उनके शुद्ध स्वरों के तुलनात्मक आन्दोलन यदि हम रखें तो वे इस प्रकार होंगे। सा = २४० (ग्रहीत), री = २७०, ग़ = २८८, म = ३२०, प = ३६०, ध = ४०५, नि़ = ४३२, सां = ४८० । इनमें से धैवत के अतिरिक्त शेष सभी स्वर हर जगह मान्य होने योग्य हैं। शेष पाँच स्वरों के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। पाश्चात्य पंडित धैवत के आन्दोलन ४०० मानते हैं। कई बार मुझसे यह प्रश्न पूछा जाता है कि तुम अपनी संगीत-पद्धति का बारह स्वरों के आधार पर वर्णन करते हो तो अपने उन बारह स्वरों के आन्दोलन के आधार क्यों नहीं बताते ? इस पर एक उत्तर मैं यह देता हूँ कि हमारे गायक आन्दोलनों को लक्ष्य करके राग नहीं गाते। गाते समय एक ही राग में विभिन्न स्वरों की संगति होने से स्वरस्थान स्वतः कुछ आगे-पीछे हो जाते हैं जो मार्मिक व्यक्तियों को दिखाई देते हैं। इसका एक प्रमाण यह है कि उत्तम प्रकार से गाते समय गायक का साथ सच्चे शास्त्रसिद्ध स्वरों में तैयार की हुई हारमोनियम पेटी से नहीं हो सकता। गायक जो स्वर आरोह में लेता है, अवरोह में लेते समय उन्हीं के स्वरस्थान कहीं-कहीं आगे-पीछे हो जाते हैं, जो मार्मिक श्रोताओं को ही दिखाई देते हैं। यही क्यों ? किसी भी थाट के स्वर पहले एक गायक से गाने को कहिये और वे ही गाने के लिये दूसरे से कहिये तो उन दोनों के स्वरस्थानों में कहीं-कहीं किंचित् अन्तर दिखाई देगा। गायक जब गाने लगता है, तब उसके मन में इष्ट-राग का चित्र अथवा स्वरूप स्वतः अंकित हो जाता है तथा उस चित्र के विभिन्न भाग अथवा रागवाचक स्वरसमुदाय उसके मन में नियमित रूप से

आते रहते हैं । उनकी सहायता से वह अपना राग कुशलतापूर्वक श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत करता है । प्रत्येक गायक अपनी पसन्द के अच्छे नामी कलावन्तों के गीत संग्रह कर लेता है तथा उसके आधार पर कुछ स्वरसंगति वह अपने मन से भी तैयार कर लेता है । प्रत्येक राग सिखाते समय सुयोग्य गुरु उस राग का खास अंगभूत भाग अपने शिष्यों को सबसे पहले बताते हैं, उसमें भी तो यही मर्म है । फिर भी जबकि हम अपनी पद्धति बारह स्वरों पर कायम करते हैं तो वे बारह स्वर कौन से हैं ? ऐसा यदि किसी ने प्रश्न किया तो हमें उसको कुछ तो उत्तर देना ही चाहिये । बारह स्वरों में से काफी थाट के सात स्वर तो अहोबल के ग्रन्थ की सहायता से सबने स्वीकार कर ही लिये हैं । अब बात केवल पाँच स्वरों की ही रही, वे हैं—रि कोमल, ध कोमल, ग तीव्र, म तीव्र और नि तीव्र । तीव्र गान्धार स्थान के सम्बन्ध में अहोबल कहता है—"मेरूधैवतयोर्मध्ये तीव्रगांधारमाचरेत् ।" ४०५ आन्दोलनों का धैवत स्वीकार करके तीव्र गांधार के आन्दोलन हम निकालें तो वे ३०१$\frac{13}{22}$ आते हैं । पाश्चात्यों की शोध के अनुसार वे ३०० हैं । ये सब आन्दोलन एक सैकण्ड में होने के कारण १$\frac{13}{22}$ भाग छोड़ देने में हम आपत्ति नहीं समझते और वह हमने छोड़ दिया तो तीव्र ग तथा तीव्र नि के आन्दोलन क्रमशः ३०० व ४५० होंगे । अब प्रश्न केवल कोमल रे, कोमल ध तथा तीव्र म का ही रहा । इनके लिये किसी भी संस्कृत ग्रन्थ की सहायता हमको नहीं मिल सकती । कोमल ऋषभ के सम्बन्ध में अहोबल स्पष्ट रूप से कहता है—"भागत्रयान्विते मध्ये मेरो ऋषभसंज्ञितात् । भागद्वयोत्तरं मेरोः कुर्यात् कोमलरिस्वरम् ।" उसकी इस युक्ति के अनुसार यदि हम देखें तो कोमल ऋषभ के आन्दोलन २५६$\frac{2}{3}$ होंगे । पाश्चात्य पंडित इस स्वर के आन्दोलन २५६ मानते हैं । मेरी समझ से गांधार के आन्दोलन ३०० स्वीकार कर लेने पर, $\frac{15}{16}$ प्रमाण अर्धान्तर का अर्थात् सेमीटोन स्वीकार करने में कोई हानि नहीं दिखती । कोमल धैवत उस कोमल ऋषभ का संवादी है अर्थात् उस स्वर के आन्दोलन ३८४ होंगे अथवा पंचम की आन्दोलन-संख्या में $\frac{15}{16}$ से गुणा करने पर भी कोमल धैवत नहीं निकलेगा । तीव्र मध्यम स्वर शुद्ध मध्यम के आगे दो श्रुति पर होने के कारण उसके आन्दोलन ३२०+$\frac{15}{22}$ = ३४१$\frac{3}{11}$ होंगे । गायक गाते समय आन्दोलनों का विचार करके कभी नहीं गाते, बल्कि राग के कुछ नियमित भाग मन में सोचकर उनमें नियमित स्वरसंगति लेकर अपना राग चित्रित करते हैं ।

उत्तम गायक का विभिन्न प्रकार के अलंकारों से अपने राग को सजाकर गाते समय कभी श्रुतिपेटी वादक साथ करने लगे तो उस गायक को अनेक चमत्कार दिखाई देंगे । एक ही राग के आरोह में तथा अवरोह में विभिन्न प्रकार की स्वरसंगतियों के कारण स्वरस्थान स्वतः आगे-पीछे होते हुए दिखाई देंगे । अर्थात् अमुक राग में अमुक स्वर अमुक श्रुति पर होना चाहिये, ऐसा निश्चित करना कठिन है, यह तथ्य उसको दिखाई देगा । शास्त्रीय प्रयोग करके देखने के लिये श्रुतिपेटी वाद्य का हम कभी विरोध नहीं करेंगे । परन्तु उस विषय में जाने की हमें अब आवश्यकता नहीं है । दक्षिण में भी अभी २२ श्रुतियाँ कायम करने का प्रयत्न जारी है तथा बीच-बीच में उन श्रुतियों को राग में विभाजित करने का प्रयोग भी होता आ रहा है । यह सारा परिश्रम प्राचीन ग्रन्थकारों द्वारा कहे गये "वादी तथा सम्वादी" इन दो शब्दों पर अवलम्बित है । इन पुराने शब्दों को लेकर हमारे

आधुनिक विद्वान् क्या-क्या नये सिद्धान्त उन प्राचीन ग्रन्थकारों के पल्ले बाँध रहे हैं, यह देखे तो उन ग्रन्थकारों पर आश्चर्य करने का प्रश्न सामने आता है।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४)

"लक्ष्यसंगीत" नामक सूत्ररूपी ग्रन्थ संस्कृत में तथा संक्षेप में होने के कारण इस ग्रन्थ पर एक विस्तृत टीका मराठी भाषा में लिखी जानी चाहिए। प्रस्तुत "हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति" ग्रन्थ उसी सुझाव का मूर्तरूप है।

प्रत्येक लेखक को अपनी गुरुपरम्परा के अनुसार रागस्वरूप का वर्णन करना चाहिये और फिर जो भी भिन्न-भिन्न मत उसके सुनने में आये हों, उनकी प्रामाणिकता का उल्लेख अपने ग्रन्थों में करना चाहिये। तत्पश्चात् उपलब्ध प्राचीन ग्रन्थों के मत सरल-सुबोध भाषा में अपने ग्रन्थों में उद्धृत करने चाहिये। ऐसा करने से प्रत्येक राग के प्राचीन एवं अर्वाचीन इतिहास की जानकारी पाठकों को हो जायगी।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ६)

सङ्गीत पद्धति के ये तीन भाग (मराठी भाषा में) सन् १९१० से १९१४ ई० में प्रकाशित हुए। तत्पश्चात् यह अन्तिम चतुर्थ भाग शीघ्र ही प्रकाशित होने को था, परन्तु बीच में अन्य कुछ महत्वपूर्ण काम आ जाने से यह भाग मैं हाथ में न ले सका। वे काम यह थे :—

(१) प्रवास में जिन प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों को प्राप्त किया था, उनको प्रकाशित करना।

(२) 'अर्वाचीन कला' भी सङ्गीत का एक महत्वपूर्ण अंग होने से उस कला पर ग्रन्थ लिखकर प्रकाशित करना।

(३) अखिल भारतीय संगीत परिषद् को सफल बनाने के कार्य में भाग लेना।

(४) कुछ बड़े-बड़े शहरों में अपनी पद्धति के विद्यालय तथा महाविद्यालय स्थापित करना, आदि।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ६)

(२) मैं प्रगति का विरोधी नहीं

नये सिद्धान्तों की पुष्टि के लिये ग्रन्थोक्तियों के साथ पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का ताल-मेल बैठाते समय यह तथ्य सदैव ध्यान में रखना चाहिये कि, पाश्चात्य विद्वानों का अनुसरण मात्र हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थकारों को न तो मान्य था और न मान्य हो ही सकता है, यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिये। हम प्रगति के विरोधी नहीं हैं, ऐसा हम बारबार कहते ही आये हैं। पाश्चात्यों के मेजर, माइनर तथा सेमीटोन यद्यपि कुछ स्थानों पर हमारे ग्रन्थों में लागू किये गए हैं, तो भी उससे पाश्चात्यों के सब स्वर हमारे ग्रन्थकारों के गले नहीं मढ़े जा सकते। मध्यम तथा पंचम में अन्तर $\frac{1}{2}$ के परिमाण में है, ऐसा सङ्गीतपारिजात से सिद्ध किया गया तो उसी पारिजात में शुद्ध रे तीन श्रुति की होकर उसका षड्ज से प्रमाण $\frac{1}{2}$ पड़ता है। सोमनाथ के शुद्ध रे का प्रमाण तो दक्षिण में $\frac{15}{32}$ माना जाता है और उसी का शुद्ध रे तीन श्रुति का ही है, यह तथ्य कैसे भुलाया जा सकता है ?

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ७४३)

उसी प्रकार प्राचीन ग्रन्थकारों के एक और शब्द के सम्बन्ध में कहना पड़ता है, वह शब्द है मूर्च्छना। भरत-शारंगदेव अपने ग्रन्थों में मूर्च्छना शब्द का प्रयोग करते हैं, यह बात सही है। फिर भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उनके रागों में मूर्च्छना कैसी थी, अर्थात् उनके योग से राग के स्पष्टीकरण में कैसी सहायता मिलती थी, यह आज तक हमारे किसी विद्वान् ने सिद्ध करके नहीं दिखाया। भरत-शारंगदेव अपनी वीणा पर पहले तार कैसे मिलाते थे, विवाद तो यहीं से है! उसके सम्बन्ध में हमारे विद्वान् उन ग्रन्थकारों के श्लोक पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करके, वे तार कैसे मिलाते थे, यह बताना पसन्द नहीं करते। और पाठकों को अपने विद्वानों के सिद्धान्तों के समर्थन में कोई प्रमाण वाद्याध्याय में नहीं मिलता, यह भी एक बड़ी कठिनाई है।

मध्यकालीन ग्रन्थकार लोचन, हृदय, श्रीनिवास, अहोबल अपने ग्रन्थों में मूर्च्छना का उपयोग किस प्रकार करते हैं, यह मैं तुमको बता ही चुका हूँ। राग-व्याख्या में जो मूर्च्छना उन्होंने कही होगी उसके आधार पर उनकी पहली उद्ग्राहतान स्पष्ट दिखती है। एक ही मेल में विभिन्न मूर्च्छनाओं से मेल में के वर्ज्यावर्ज्य स्वरों को सम्हालकर वे भिन्न-भिन्न प्रकार के राग मानते थे, ऐसा मानने के लिए अच्छा आधार भी है। उन्होंने प्रत्येक राग का स्वरकरण दिया है, अतः उस स्वरकरण में उन्होंने कैसी मूर्च्छना का प्रयोग किया, यह जाना जा सकता है। इन ग्रन्थकारों के बाद के लेखकों ने मूर्च्छना शब्द का प्रयोग न करके ग्रहांशन्यास शब्द का प्रयोग करके शुरुआत की तथा स्वरकरण देना उचित नहीं समझा। आगे तो ग्रहांशन्यास नियम भी परिवर्तित होता गया, आजकल वादी तथा संवादी स्वर प्रत्येक राग के सम्बन्ध में कहे जाते हैं, और वे भी अपनी-अपनी गुरु परम्परानुसार कायम करने में आते हैं। इससे हम कितने आगे बढ़ गये हैं, यह दिखाई देगा। हम किसी की विचारधारा का उपहास नहीं करना चाहते, हम तो हमेशा स्पष्ट व निर्विवाद लेखों का आदर करेंगे। दक्षिण में आज मूर्च्छना को राग का आरोह तथा अवरोह मानने वाले अनेक पंडित मिलेंगे।

सङ्गीत विद्या में प्रगति के विरुद्ध जाने पर किसी की चल नहीं सकती। पाश्चात्य सुधार का प्रभाव हमारे सुधार पर कितने ही प्रकार से हो रहा है, यह हम प्रायः देखते ही हैं। वाद्य-कला में पाश्चात्यों ने अनेक नये-नये शोध व आविष्कार किये हैं; वृन्दवादन के सम्बन्ध में उनकी कल्पना हमारी कल्पना की अपेक्षा बहुत आगे बढ़ गई है। नृत्य-कला के हेतु वहाँ की महिलाएँ हमारे देश में आती हैं तथा हमारी कला के मर्म का अध्ययन करके लौट जाती हैं। वहाँ जाकर वे इसका उपयोग नये ढंग से वहाँ के श्रोताओं को करके दिखाती हैं, यह सब कैसे भुलाया जा सकता है? इतना ही नहीं, वरन् हमारी आजकल की सङ्गीत कला को अब एक जंगली प्रकार न समझ कर एक विचारणीय कला के रूप में पाश्चात्य मर्मज्ञ पंडित मानने लगे हैं। सारांश यह कि ऐसे समय में हमारे सङ्गीत की राष्ट्रीयता पर उस पाश्चात्य सुधार का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ेगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता। परन्तु उस भावी स्थिति पर आज ही विचार की आवश्यकता हो, ऐसी भी बात नहीं। सङ्गीत में हमारा लक्ष्य कैसा था तथा आज कैसा है, केवल इतना ही बताने का मेरा उद्देश्य था।

प्रचलित संगीत पर सम्भाषण करने का यह हमारा चौथा प्रसंग है। अपने सम्भाषण में हमने एक नियत क्रम निश्चित कर लिया था कि हमारे आज के प्रचार में जो लगभग सवा सौ-डेढ़ सौ राग गाये जाते हैं, वे सब उनके स्वरूप के अनुसार मुख्य दस थाटों में पहले बाँट दें और फिर एक-एक थाट को लेकर उस मेल के अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक राग के स्वतन्त्र नियम देख लिये जायँ। मेल थाट संख्या दस ही क्यों ? ऐसा यदि किसी ने प्रश्न किया तो उसको हम यह विनम्र उत्तर देंगे कि हम प्रस्तुत विवेचन के लिए अपनी दृष्टि से दस मेल ही पर्याप्त समझते हैं। किसी ने मेल अधिक और किसी ने कम माने तो हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं। मेल कितने व क्यों लिये जायें—यह प्रत्येक ग्रन्थकार अपनी सुविधानुसार निश्चित करता आया है। प्रचलित रागस्वरूप समंजस्यरूप से वर्णित किये जायँ तो बहुत उत्तम है। देश में अनेक स्थानों पर स्वीकृत दस मेल की पद्धति पसन्द की हुई दिखाई देती है। इसलिये हमने वह स्वीकार की, यह अच्छा ही हुआ।

दस मेल के, उनके स्वरों पर से हमने प्रथम तीन समुदाय किये थे, यह तुमको याद ही होंगे। पहले समुदाय में री, ध तथा ग इन तीन शुद्ध-स्वरों को लिये जाने वाले मेल का समावेश किया था। वे मेल हैं कल्याण, बिलावल तथा खमाज। दूसरे समुदाय में रे कोमल तथा ग, नि शुद्ध लिये जाने वाले मेल लिये और तीसरे समुदाय में ग तथा नि कोमल लिये जाने वाले मेल हमने माने। अर्थात् दूसरे समुदाय में भैरव, पूर्वी तथा मारवा और तीसरे समुदाय में काफी, आसावरी, भैरवी तथा तोड़ी मेल हमने माने। ऐसी रचना करते समय हमने एक यह तथ्य भी अपने ध्यान में रखा था कि इस वर्गीकरण से राग का समय भी स्थूल दृष्टि से एकदम ध्यान में आ जाता है। आशा है यह सब बातें तुम्हारे ध्यान में होंगी ही।

(हि० सं० प० भाग ४, पृ० ७२४-७२५)

(३) दक्षिणोत्तर संगम

दक्षिण के ग्रन्थों में बिलावल तथा खमाज थाट में और भी कई राग उनके आरोहावरोह देकर वर्णित किये गए हैं। उनमें से कुछ हमारी उत्तरपद्धति में सहज ही सम्मिलित होने योग्य हैं।

वर्ज्यावर्ज्य स्वरों से वादी कौन सा स्वर होगा, यह बुद्धिमान लोगों की समझ में सरलता से आ जाता है और यह तथ्य समझ लेने पर राग रात्रिगेय है अथवा दिनगेय है, यह निश्चित हो ही जाता है। वादी स्वर कायम होने पर कौन-सा स्वर दुर्बल, कौन-सा सम व कौन-सा प्रबल है, यह निश्चित करना गायक की कुशलता पर निर्भर है। फिर भी जो राग आज दक्षिण में लोकप्रिय हैं, वे प्रथम सुनकर तथा उनके जीवभूत भाग ज्यों के त्यों रखकर फिर उनको उत्तर के ढांचे में ढाला जाय तो मेरी समझ से वे राग सर्वत्र आदर पायेंगे। ऐसे रागों को प्रत्यक्ष संस्कृत ग्रन्थों का आधार होने से उनकी योग्यता के सम्बन्ध में शंका उत्पन्न ही नहीं होती। उत्तर के अनेक राग दक्षिण के कलावन्तों के संग्रह में आज दिखाई देते हैं। दक्षिण के राग संग्रहीत करके उनको उत्तर के मनोहर स्वरूपों में

गाने में कोई आपत्ति नहीं। दक्षिण के आरभी, हंसध्वनि, नारायणी, नागस्वरावली, प्रताप वराली, आनन्दभैरवी, यदुकुलकांभोजी आदि राग हमारे नाटककारों ने उत्तर के संगीत में सम्मिलित कर ही लिये हैं। उत्तर-दक्षिण में आपसी आवागमन बढ़ने से ऐसा होना ही था और मेरे मत से ऐसा होना आवश्यक भी है। दक्षिण में आज भी एक ऐसी गलतफहमी है कि उत्तर के सङ्गीत में कोई पद्धति आदि नहीं हैं, यह भ्रम अब अखिल भारतीय संगीत परिषदों की सहायता से बहुत कम होता जा रहा है। हमारे सङ्गीत की पद्धति वहाँ के पण्डितों ने अभी तक भली प्रकार नहीं समझी है। हमारे रागों में उन्हीं के अनुसार मेल तथा आरोहावरोहादि सब कुछ है, यह तथ्य जैसे-जैसे उनको दिखाई देगा वैसे-वैसे उनका ध्यान उत्तर संगीत की ओर विशेषरूप से आकर्षित होगा।

(हि० सं० प० भाग ४, पृ० ७४१-७४२)

(४) संगीत जो करे उसकी विद्या है

मेरे गुरु रावजी बुवा बेलबागकर ने एक बार मुझ से कहा था कि उन्होंने अपनी ७५ वर्ष की आयु में वारिस खाँ जैसा तोड़ी गाने वाला नहीं सुना। उसने एक बार दो घंटों तक तोड़ी गाई और श्रोता बिलकुल नहीं ऊबे। बल्कि कुछ लोगों के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो चली थी। आँसू दुख के नहीं, आनन्द के। उसका गाना रुकने पर कितनी देर तक हमारे मस्तिष्क में उसके मधुर आलाप का प्रभाव रहा, यह बात भी उन्होंने कही।

अब इस प्रकार के गायक दिखाई पड़ना कठिन ही है। परन्तु यह विद्या तो जो करे उसकी है। किन्तु आगे-पीछे तुम में से ही कोई अथवा आगे की पीढ़ी में ऐसा कोई कलाकार नहीं निकलेगा, यह क्यों सोचते हो? विशेष उत्तम स्वरज्ञान एवं रागज्ञान होने पर और तत्पश्चात् नियमित अभ्यास करने से गले में उज्ज्वलता (रोशनी) पैदा होती है, ऐसा गायकों के मुख से हम सुनते हैं। परन्तु यह सब परिश्रम तथा दीर्घोद्योग पर निर्भर है।

(हि० सं० प० भाग ४, पृष्ठ ६८२)

(५) घरानों का इतिहास

जहाँ भी गायकों के घरानों की जानकारी मेरी समझ में आई, वह मैंने तुमको कह सुनाई। किन्तु केवल इतनी जानकारी से गायकों के घरानों का सम्पूर्ण इतिहास तुम्हारी समझ में आ गया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार का इतिहास प्राप्त करने के कुछ साधन-मात्र मैं बीच-बीच में कह चुका हूँ। आगे-पीछे अवकाश मिलने पर गायकों के घरानों का विश्वसनीय इतिहास लिखने का महत्वपूर्ण कार्य तुम करोगे तो वह अत्यन्त उपयोगी होगा। इस कार्य में पाश्चात्य पंडितों का अनुकरण करना सर्वथा उचित होगा। वहाँ के गायक-नायकों के चरित्र अत्युत्तम प्रकार से लिखे हुए दृष्टिगोचर होंगे। वैसा ही अपने यहाँ होने की आवश्यकता है। इस कार्य में मुसलमानी शासनकाल के उर्दू तथा पर्शियन ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी होंगे। एक तो यह बात है कि मुझे उन दोनों भाषाओं का ज्ञान नहीं है, और थोड़ी बहुत वह आती भी है तो अन्य साधनों के अभाव के कारण यह कार्य मेरे द्वारा नहीं हो सका।

(हि० सं० प० भाग ४, पृ० ४०३)

(६) भावी संगीत; वाद्य और नृत्य में सुधार

प्रिय मित्रो ! विभिन्न ग्रन्थों के यह उद्धरण देकर मैंने तुमको उबा दिया है, ऐसा बीच-बीच में मुझे मालूम पड़ता है। परन्तु मेरा स्वयं का मत यह है कि जो विषय सीखना हो उसका पूर्व इतिहास हमें अवश्य मालूम होना चाहिये। मैं हिन्दुस्तान के बाहर कभी नहीं गया, इसलिये ईरान अथवा पूर्व के चीन व जापान देशों में संगीत कैसा है, वहाँ के और अपने स्वरों में कुछ समानता है अथवा नहीं, अथवा अपने रागों जैसी व्यवस्था वहाँ भी कुछ है क्या, इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता। परन्तु वहाँ जाने का संयोग यदि तुमको मिले तो इन बातों पर अवश्य ध्यान देना। अपने यहाँ समाज-गायन यानी एक साथ बहुत से मनुष्यों द्वारा मिल कर गाना, ऐसा प्रकार चालू नहीं है, अपने संगीत में यह अभाव कोई-कोई बतलाते हैं। अपने गायन में वीर-रस-प्रधान तथा सृष्टि सौन्दर्य का वर्णन करने वाले गीत नहीं हैं। शृंगार-रस-प्रधान गीत अधिक हैं, यह भी एक कमी बतलाते हैं। इन तमाम बातों का तुमको आगे-पीछे विचार करना पड़ेगा। मैंने तुमको इतना ही बताने का प्रयत्न किया है कि पहले क्या था और आज क्या है। भावी-संगीत की पूर्ण जिम्मेदारी मैं तुम पर छोड़ने वाला हूँ। जो तुम्हे अच्छा दिखाई दे तथा जो अपने लिये उपयोगी हो एवं जिससे अपनी राष्ट्रीयता कम न हो, उसे लेने में कोई आपत्ति नहीं। चाहे फिर वो किसी का भी हो। यह मैं बार-बार कहता आया ही हूँ। अब नई-नई गीत रचना होनी चाहिये, पीछे के गीतों में अधिक सुबोधता व रंजकता आनी आवश्यक है, ऐसा भी हम सुनते हैं। मुझसे जितना सम्भव था उतना मैंने किया है, अब आगे का काम तुम्हें ही करना होगा, ऐसी मेरी उत्कट इच्छा है। नये-नये उत्तम नियमों वाले राग प्रचार में लाकर उनमें उत्तमोत्तम गीत-रचना होना अब आवश्यक है। संगीत के वाद्य अंग में बहुत सुधार होने की आवश्यकता है, ऐसा हमारे विद्वान् कहते हैं। उसी प्रकार नृत्याध्याय का अभ्यास करके उसमें कितना लेने योग्य है व कितना छोड़ने योग्य, इसका भी विचार हमें करना ही है। पाश्चात्य संगीत के शास्त्र तथा कला का अभ्यास आप लोग आगे चल कर अवश्य कीजिए। इस विषय को अब राज्याश्रय भी प्राप्त है, अतः क्रमशः अपने इच्छित कार्य को सक्रिय रूप देना सम्भव दिखाई देता है।

(हिं० सं० प० भा० ४, पृ० ३५४-३५५)

(७) सुयोग्य परिवर्तनों का स्वागत

कुछ ही वर्षों में अपने ये रागरूप अवश्य ही परिवर्तित होंगे और इस परिवर्तन में ही आनन्द है। अब अपने विद्वान् पश्चिमी देशों की यात्राएँ कर रहे हैं, अतः वहाँ की नई-नई कल्पनाएँ अपने यहाँ अवश्य आवेगी। वहाँ के सहस्रों ग्रामोफोन रिकार्ड अपने यहाँ आते हैं, जिनके कारण से अपने संगीत में कुछ-कुछ परिवर्तन होने लगा ही है, ऐसा जानकारों का मत है। यदि ऐसा हुआ तो खेद करने का हमारे लिये कोई कारण नहीं। यद्यपि मैं स्वयं प्राचीन नायकों का संगीत लिख कर रखता हूँ तो भी मैं नवीन-नवीन विद्वानों की शोध के बिलकुल विरुद्ध नहीं। दिन-प्रतिदिन यह कला बढ़ती ही जानी चाहिये और यह बढ़ेगी ही। हाल में ही दक्षिण के कुछ राग जैसे शंकराभरण, हंसध्वनि, आनन्द-

भैरवी, काम्भोजी, आभीरी आदि रंगभूमि से अपने समाज में नहीं आये हैं क्या ? इस विषय में कूप-मण्डूक मनोवृत्ति नहीं चलेगी। बंगाल प्रान्त के प्रचलित प्रकार हमारे यहाँ आये और अपने प्रकार वहाँ गये, इसका भी परिणाम अच्छा ही होगा। फिर भी यह परिवर्तन जितने योग्य अधिकारियों के हाथों से होगा उतना ही अच्छा, ऐसा मेरा विशेष मत है।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ३४८)

(८) उर्दू और पर्शियन भाषा के ग्रंथ

मित्रो ! मियां की सारंग के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख नहीं मिलता तथा बाद के संस्कृत ग्रन्थों में कुछ नहीं कहा गया है, फिर भी उर्दू अथवा पर्शियन ग्रन्थों में इस राग का उल्लेख होना सम्भव है। परन्तु एक तो मुझे ऐसे ग्रन्थ मिले नहीं और फिर मुझे वह भाषा नहीं आती, इसलिये उन ग्रन्थों में इस राग के विषय में कुछ कहा गया है अथवा नहीं, यह मेरे लिये कहना संभव नहीं है। तुम इसकी खोज अवश्य करना। काश्मीर के फकीरुल्ला के 'रागदर्पण' में अथवा "मादनुलमौसीकी" जैसे ग्रन्थों में कदाचित् कुछ कहा गया हो। रामपुर की लायब्रेरी में कुछ उर्दू तथा पर्शियन रिसाले हैं, उनमें भी कुछ मुस्लिम राग सम्बन्धी जानकारी मिल सकती है।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ३०३-३०४)

(९) काश्मीर में राग दर्पण

चार-पाँच वर्ष पूर्व बड़ौदा की श्री० सौ० महारानी साहिबा के साथ मैं भी काश्मीर गया था। वहाँ की लायब्रेरी (जम्मू के रघुनाथ मन्दिर में है) में राग दर्पण फारसी भाषा में देखा। वहाँ के ग्रन्थाध्यक्ष संस्कृतज्ञ थे। उन्हें फारसी नहीं आती थी, इसलिये ऐतिहासिक जानकारी के विषय में उन्होंने अनभिज्ञता प्रकट की। तुम लोग उधर कभी जाओ तो उस ग्रंथ को अवश्य देखना।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० २१९)

(१०) राग और रस

प्रचार में जो राग हम गाते-बजाते हैं, उनका सम्बन्ध रागों के रसों से सयुक्तिक व सुबोध रीति से स्थापित करने का कार्य कठिन है और सुशिक्षित संगीत विद्वान् ही यह कार्य कर सकते हैं, आज तक अनेक कारणों से यह कार्य नहीं हो सका।

साधारण जानकारी से यह कार्य पूर्ण नहीं हो सकेगा, कारण किस स्वर का किस व्यक्ति पर, किस स्थान में, किस विशेष प्रसंग पर क्या परिणाम होगा; यह सिद्ध करना बड़ा कठिन कार्य है।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० २५)

(११) कला के साथ विद्या एक शुभ चिह्न

परन्तु उस समय के हमारे विद्वानों ने इस विषय की ओर जितना ध्यान देना चाहिए था, उतना दिया नहीं, सारांश "कला थी तब विद्या नहीं थी और विद्या थी तब

कला नहीं" यही कहना पड़ता है। यह ढंग पिछले सौ-दो-सौ वर्षों में संभवतः ऐसा ही रहा होगा। अब विद्या है तथा उसका उपयोग संगीतोन्नति में करने की इच्छा भी है, तो वह कला नहीं। फिर भी ईश्वर की कृपा से जहाँ ये दोनों बातें थोड़ी बहुत अनुकूल हैं, वहाँ इनका सुयोग भी होता ही है, यह शुभ-चिन्ह है।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ६६५)

(१२) कौन सा नोटेशन अच्छा या बुरा : विवाद मत करो

अमुक राग अमुक समय में किस प्रकार गाते थे, इसका ज्ञान आगे की पीढ़ी को प्राप्त कराने के लिये नोटेशन जैसा अन्य कोई साधन नहीं। अब ग्रामोफोन भी उसकी अपेक्षा अधिक उपयोगी साधन बन गया है। हम आजकल इस प्रकार की आलोचना सुनते हैं कि अमुक मनुष्य का नोटेशन अच्छा है, अमुक का नोटेशन बुरा, इस प्रकार के विवाद में तुम कभी मत पड़ो। सर्वथा सर्वांग-परिपूर्ण, जैसा मूल गायक गाता है वैसा हू-ब-हू लिखने वाला नोटेशन अभी तक कहीं भी नहीं बन सका है, ऐसा कहना ही पड़ेगा।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ४१४)

(१३) विविध मल्लार प्रकार मैंने रामपुर में पाये, तुम बंगाल में देखो

...परन्तु उनमें की अधिकांश चीजें उन्होंने मुझे सिखाई हैं, वे वैसी ही मैं तुमको बताऊँगा। मल्लार के एक-दो प्रकार छोड़ कर शेष चीजें मैंने सीखी थीं। मेरे गुरु रामपुर के नवाब साहब ने भी मुझे वे सुनाई थीं। ये प्रकार अप्रसिद्ध होने के कारण अप्राप्य होते हैं, इस कारण उनकी प्रगति अथवा गायकी सुनने का अवसर अधिकतर नहीं आता। अप्रसिद्ध होने के कारण वह विवादग्रस्त भी होते हैं। बंगाल प्रान्त में मल्लार के अनेक प्रकार गाये जाते हैं, वहाँ कभी तुम्हें जाने का अवसर मिले तो वे तुम्हारे सुनने में अवश्य आयेंगे। पसंद आयें तो वहाँ के गायकों से तुम सीख लेना।

(हिं० सं० प० भाग ४, पृ० ३८६)

(१४) विभिन्न रंग-ढंग के गीत रागों के अंगों की पूर्ति करते हैं

तुम्हारी क्रमिक पुस्तकों में गौड मल्लार में अनेक चीजें उत्तमोत्तम घरानों की आयेंगी ही। उनकी सहायता से यह राग तुमको अच्छी तरह गाते बनेगा। उत्तम प्रकार के गायकों को सुनकर, इस राग के भाग वे भिन्न-भिन्न प्रकार से कैसे जोड़ कर गाते हैं, यह देख कर तथा उनका अनुकरण करके गाने का उपक्रम करते चलो तो किसी दिन तुम भी वैसे ही नामी गायक हो जाओगे। एक ही राग में अनेक चीजें सीख लेना हितकारी है। भिन्न-भिन्न चीजें भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग-ढंग की रची हुई आ जाती हैं तो राग के सब अंगों की पूर्ति हो जाती है।

(हिं० सं० प० भा० ४, पृ० ३६५)

(१५) कलकत्ते में 'तोफे-तुल-हिंद' प्राप्य

'तोफे-तुल-हिंद' नामक ग्रन्थ कलकत्ते में देखा जा सकता है, ऐसा कहते हैं।

(हिं० सं० प० भाग ३, पृ० १)

(१६) चित्र और रंग की कोरी कल्पना

चित्र के साथ रंग का प्रश्न भी आयेगा ही, उसमें जो अड़चन है उसके विषय में मैंने दो शब्द कहे ही हैं। रागों की मूर्ति की निन्दा करके भावुक लोगों से व्यर्थ ही वैमनस्य बढ़ाते रहना हमारे लिए जरूरी नहीं। वह भाग तो विवादग्रस्त ही रहने योग्य है। पहले तो रंग का विषय ही हमने कहाँ सीखा है ? उस विषय पर पश्चिम की ओर विशाल ग्रन्थ लिखे गये हैं, ऐसा कहा जाता है। उन्हें पढ़कर और प्रत्यक्ष प्रयोग करके एवं संस्कृत ग्रन्थकारों के वर्णनों से उनका मिलान करके कोई विद्वान् कुछ लिखे तो उसका लोग उपकार मानेंगे। किन्तु यह स्पष्ट है कि वर्तमान काल में कोरी कल्पना नहीं चल सकेगी।

(हिं० सं० प० भाग ३, पृ० २०)

(१७) बीकानेर में 'अनूपविलास'

इससे सम्भवतः यह भी सिद्ध हो सकता है कि "हृदयप्रकाश" उत्तर का ग्रन्थ है। उसका भावभट्ट ने अपने अनूपविलास में जो प्रमाण के बतौर आधार लिया है वह मैं विभिन्न स्थानों पर कहता ही आया हूँ। वह ग्रन्थ बीकानेर की लाइब्रेरी में है। वहाँ के अधिकारियों से उसकी एक नकल तुम आगे प्राप्त करना।

(हिं० सं० प० भाग ३, पृ० ८०)

(१८) स्वयं साधार बनो

हमें किसी के मत से विरोध नहीं है। श्रोताओं का मनोरंजन हो, राग स्पष्ट और निराले हों, श्रोताओं को राग-नियम अच्छी तरह से पहचानने में आवें और जहाँ तक सम्भव हो सके, उत्तम शास्त्र-परम्परा तथा गुरु-परम्परा हो, तो बस। ग्रन्थकारों में, गायक-वादकों में एवं विद्वानों में मतभेद रहता ही है, यह बात कभी न भूलना। अपना मत अपने लिये पर्याप्त शुद्ध, उपयोगी और साधार हो तो ठीक है। आज का सङ्गीत अपने प्राचीन ग्रन्थों को छोड़ ही चुका है। तो फिर हम लोगों से वाद-विवाद क्यों करते रहें ? हम अपने मार्ग से चलें और अपना सङ्गीत शास्त्र हमेशा अपने शिष्यों और मित्रों को सप्रयोग समझाते रहें तो बस अपना काम पूर्ण हुआ समझो।

(हिं० सं० प० भाग ३, पृ० १५८)

(१९) नोटेशन का विवाद संगीत की प्रगति में बाधक न होने दो

मेरा मत है कि संगीत की लेखन-पद्धति आवश्यक है। यह सहज ही समझ में आ जावेगा कि समस्त देश में एक ही लिपि होने पर कार्य उत्तम रूप से पूरा होगा। पाश्चात्य लोगों ने इसी तत्व पर सर्वत्र समान लेखन-पद्धति स्वीकार की है, इससे उन्हें होने वाले लाभ हम देखते ही हैं। ऐसा नहीं है कि यह बात हमारे यहाँ ज्ञात न हो, परन्तु हमारे यहाँ प्रत्येक पुस्तक-लेखक समझता है कि मेरी ही लिपि निर्दोष व सुलभ है तथा वही सारे देश

को मान्य होनी चाहिये। ऐसा समझना स्वाभाविक तो है, परन्तु यह भी देखना होगा कि ऐसा हो सकना सम्भव भी है या नहीं। संगीत पर लिखे हुए प्रायः समस्त ग्रंथ मैं पढ़ता रहा हूँ तथा भिन्न-भिन्न लिपियाँ मेरे लिए देखने में आई हैं। इनमें शुद्ध 'स्वदेशी' एक भी लिपि नहीं दिखलाई दी। जिसे देखो, उसने चार-पाँच पद्धतियों का मिश्रण कर अपनी नवीन लिपि बनाकर रख दी है। कोई यूरोपियन 'स्टाफ' की लकीरों में अपने नादस्थान दिखाता है, कोई यूरोप के 'बार' सम्मिलित करता है, कोई पाश्चात्यों के पुनरावर्तन के चिन्ह लेता है। इस प्रकार की लिपियाँ सदैव दिखाई पड़ती हैं। मेरा कथन इतना ही है कि जिस विद्वान् को अपना संगीत बारह स्वरों का ही लिखना है, वह इस टेढ़े-मेढ़े या गंगा-जमनी मार्ग को छोड़ कर सीधी तरह यूरोप का नोटेशन ही क्यों नहीं ग्रहण कर ले ? हम लिपिकारों से सुनते हैं कि यूरोप की लिपि में मुरकी, गिटकरी, जमजमा, घसीट, मींड़ आदि प्रकार अच्छी तरह नहीं बताये जा सकते। मैं समझता हूँ कि यदि इसके लिये नवीन-चिन्हों की रचना भी करनी हो तो किसी बैण्डमास्टर को सहायता से कर लेनी चाहिये। वे स्वदेशी ही हों ऐसी क्या आवश्यकता है ? रत्नाकर में लघु, गुरु, प्लुत, द्रुत के लिए दिए हुए चिन्हों को तोड़-मरोड़ कर उलटे-सीधे जमाकर, उन्हें तिपाई पर बैठा कर नई पद्धति उत्पन्न करने का उपद्रव करें ही क्यों ? राग-विबोध में पाँच-पच्चीस चिन्ह दिखाई देते हैं, उन्हें लेकर ही नवीन पद्धति क्यों रची जावे ? ग्रन्थों के राग हमारे नहीं, अतः हम मुसलमानी प्रकार गाते हैं। परन्तु स्वर-लिपि के चिन्ह रत्नाकर के ही लें। यह हमारा कैसा अभिमान है ? ऐसे स्वरूपों की कोई निन्दा भी करे तो आश्चर्य नहीं। स्वदेशी पद्धति का अभिमान रखने वालों से मेरा बिलकुल विरोध नहीं है। मैं उन सभी को अपना मित्र व बन्धु समझता हूँ। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि यह विषय विवादग्रस्त है, परन्तु मैंने अपने आंतरिक-विचार तुम्हें स्पष्ट रूप से बता दिये हैं।

अपनी पद्धति प्रामाणिक रूप से स्वदेशी चाहिये न ? यदि यूरोप के तत्व ग्रहण किए हों तो फिर उन्हें लीपना-पोतना क्यों ? इसकी अपेक्षा यूरोप का नोटेशन ही आवश्यक परिवर्तन करके ग्रहण कर लिया जावे, तो क्या बुरा है ? मैं इस समय किसी विशेष पद्धति को लक्ष्य कर नहीं बोल रहा हूँ। सम्भव है मेरा यह मत जल्दबाजी का हो, परन्तु मेरा विश्वास है कि 'अ' के कोमल स्वर-चिन्ह, 'ब' के तीव्र चिन्ह 'क' के गमक चिन्ह, 'ड' के आवर्तन चिन्ह, 'ग' के ताल चिन्ह, 'फ' के काल चिन्ह इस प्रकार के व्यर्थ के भेद करते रहने से अनेक लोगों से अकारण वैमनस्य होगा व संगीत की प्रगति को हानि होने का भय हो जावेगा। जिस मार्ग से समाज का हित हो, वही मैं पसन्द करूँगा। मैंने स्वतः कुछ लक्षणगीत तुम्हारे लिये लिख रखे हैं। उन्हें किसी न किसी स्वरलिपि में तो लिखना ही पड़ता। मैं स्वीकार कर चुका हूँ कि मुझे यूरोप का संगीत नहीं आता। मुझे अपनी स्वीकृत स्वरलिपि का जरा भी अभिमान नहीं है। यूरोपियन नोटेशन यदि मुझे आता तो मैं अपने गीत उसी प्रकार लिखता। तुम अपने राग अभी उत्तम रूप से सीख लो फिर जो योग्य जंचे, उस लिपि को स्वीकार कर लेना।

(हि० सं० प० भाग २, पृ० १८१-१८२)

(२०) इन्हें मैं आपके लिये छोड़ देता हूँ

प्रिय मित्रो ! अब हम अपना सम्भाषण शीघ्र समाप्त करेंगे। प्रचलित संगीत के सम्बन्ध में जितनी जानकारी तुमको होनी आवश्यक थी, उतनी मैं तुम्हें दे चुका हूँ। अब ताल तथा नवीन गीतरचना के नियमों पर बोलना उचित होगा। परन्तु वह इस समय सम्भव नहीं है। ख्याल, ध्रुवपद, धमार आदि रचनाओं के कुछ नियम दृष्टिगत होते हैं। अमुक राग में ख्याल-रचना करने के लिये कौन-से स्वर से प्रारम्भ होना चाहिये और वैसा करने पर उस गीत के अस्ताई (स्थायी) में कितने आवर्तन (आवृत्ति) होने चाहिये, सम कौन-से स्वर पर होनी चाहिये, पुनः अस्ताई से जोड़ने की क्रिया कैसे करनी चाहिये आदि बातें बुद्धिमान व्यक्तियों को स्वतः अनुभव से आ जाती हैं। इस प्रकार के कुछ नियम उदाहरण सहित तुमको बताने की मेरी इच्छा थी, परन्तु वह इस समय सम्भव नहीं। ये सब कृत्य धीरे-धीरे अनुभव से तुमको भी सध जायगा, ऐसा मेरा विश्वास है। संगीत एक प्रकार की नाद-भाषा है, ऐसा जो कहा जाता है वह गलत नहीं। प्रत्येक गीत में संगीत के विभिन्न वाक्यों की सुसंगत रीति से रचना होती है। वे गीत सीखते समय उनके वाक्यों की ओर ध्यानपूर्वक देखना पड़ता है। यह लॉज ऑफ़ म्यूज़िकल कम्पोज़िशन्स् (गीत रचना के नियम) विदित होने पर प्राचीन ग्रन्थों में जो अनेक राग उनके आरोहावरोह सहित कहे हुए दिखाई देते हैं, वे भी पुनः प्रचार में सहज ही लाये जा सकते हैं। अस्तु, मेरी तो आयु हो चुकी है अतः इस विषय की अधिक सेवा मेरे हाथों से आगे कितनी व कैसी हो सकेगी, यह नहीं कहा जा सकता। कारण, यह सब भगवान् की इच्छा पर निर्भर है। फिर भी मैंने अपनी उम्र में जो ज्ञान सम्पादित किया, उसका एक बड़ा भाग तुमको देने से मेरी बहुत कुछ जिम्मेदारी कम हो गई है। तुम तरुण, विद्यासम्पन्न, बुद्धिमान् तथा संगीत-प्रेमी हो, अतः मेरे द्वारा प्रस्तुत की हुई सामग्री में जिन बातों का अभाव तुम्हें दिखाई देगा, तुम उसकी पूर्ति स्वसंपादित ज्ञान से सहज ही कर सकोगे।

कुछ महत्वपूर्ण बातों के सम्बन्ध में मेरे द्वारा की गई शोध अभी तक निर्णयात्मक अवस्था में नहीं पहुंच सकी है। यह तथ्य समय-समय पर मेरे भाषणों से तुम्हारे ध्यान में आ गया होगा, उसी प्रकार कुछ बातें संभव होने पर भी मेरे हाथों से पूर्ण नहीं हो सकीं। उदाहरणार्थ :—

(१) सामवेद के स्वरों की तुलना आगे के ग्रन्थकारों के स्वरों से कहाँ तक हो सकती है, यह देखना।

(२) रत्नाकरादि प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित रागों का सुबोध स्पष्टीकरण उन ग्रन्थों में दी गई सामग्री से करके दिखाने का प्रयत्न करना।

(३) प्राचीनकाल में रागरागिनी पुत्र आदि व्यवस्था किन तत्वों पर हुई होगी, उसकी योग्यायोग्यता तथा वैसी व्यवस्था प्रचलित संगीत में हो सकती है कि नहीं, ऐसा करना विशेष हितकारी होगा अथवा नहीं, इन प्रश्नों पर भली प्रकार विचार करके कुछ स्पष्टीकरण करना।

(४) राग व रस का प्राचीन एवं अर्वाचीन दृष्टि से सम्बन्ध पुनः प्रस्थापित करने का प्रयत्न करना।

(५) श्रुति व स्वरों का प्राणियों के शरीर पर होने वाला परिणाम तथा उस परिणाम के लिये गीत के बोलों की कितनी व कैसी आवश्यकता है, इस सम्बन्ध में समाधानकारक एवं शास्त्रीय दृष्टिकोण से स्पष्टीकरण करना।

(६) नाट्य-संगीत का उत्तम निरीक्षण करके उसमें कौन-से संशोधन की आवश्यकता है, यह निश्चित करने का प्रयत्न करना।

(७) श्रुति तथा स्वर का नवीन शास्त्रीय पद्धति से निरीक्षण करना, अतिकोमल तीव्रतरादिक स्वरों का विशिष्ट रसोत्पत्ति में क्या उपयोग हो सकता है, इसका विचार विद्वज्जनों की परिषद् में करना।

(८) दिनगेय तथा रात्रिगेय रागों का शास्त्र-सम्मत एवं सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध प्रस्थापित करना।

(९) प्रत्येक राग का काल निर्णीत करके, वह काल-नियम प्राचीन-काल से संगीत में क्यों व कैसे आया ? यह निश्चित करके समाज के सामने प्रस्तुत करना।

(१०) प्रचलित नृत्य-पद्धति के गुण दोष खोजकर इस कला का उत्कर्ष किस प्रकार होगा, इस सम्बन्ध में उपाय सोचना।

(११) दक्षिण तथा उत्तर के संगीत का ऐसा सुयोग करके दिखाना कि जिससे दोनों पद्धतियों का हित होकर सङ्गीत को उत्तम राष्ट्रीयत्व प्राप्त हो।

(१२) प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थों के भाषान्तर मराठी में करा कर पुस्तकें प्रकाशित करना एवं अपने शहर में एक बड़ा सङ्गीत पुस्तकालय स्थापित करना।

(१३) अपने शहर में विशिष्ट प्रकार के सङ्गीत विद्यालय स्थापित करना तथा उसमें योग्य विद्वानों की नियुक्ति करके उसको युगानुकूल चलाकर दिखाना।

(१४) विशेष कलावन्तों के लड़कों के लिये एक पृथक् विद्यालय स्थापित करना तथा उसमें घरानेदार एवं अनुभवी कलावन्तों को नियुक्त करके परम्परागत कला को जीवित रखने का प्रयत्न करना।

(१५) प्राचीन अथवा अर्वाचीन अप्रसिद्ध रागों के 'रेकार्ड' लेकर उन्हें पुस्तकालयों-संग्रहालयों में रखना तथा उनका उपयोग समस्त शोधकर्ता विद्यार्थी कर सकें, ऐसी व्यवस्था करना आदि, आदि।

यह तथा ऐसी और भी कुछ बातें अभी रह गई हैं। तुम तरुण एवं उत्साही हो, इसलिये मुझे आशा है कि तुम इनकी ओर ध्यान देकर यश प्राप्त करोगे। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये बहुत प्रयत्न की आवश्यकता होगी, बहुत स्वार्थ त्याग करना होगा एवं बहुत सी भली-बुरी टीका-टिप्पणी सहन करनी पड़ेगी। परन्तु मुझे विश्वास है कि तुमने यदि कठिन परिश्रम करने का और फलाफल ईश्वर को सौंपने का निश्चय कर लिया तो तुमको पर्याप्त सफलता तथा यश प्राप्त होगा। मैं जीवित रहा तो तुम्हारे कार्य में यथाशक्ति एवं यथामति सहयोग देने के लिये सदैव तत्पर रहूँगा। परन्तु यह सब अब ईश्वर के आधीन है। जितनी सेवा मुझ से लेने का उसने निश्चय

किया होगा, उतनी वह लेगा ही। अस्तु, इस प्रसंग पर दी गई जानकारी तुम्हारे लिये पर्याप्त होगी, ऐसा समझकर अब मैं तुमसे आज्ञा लेता हूँ।

(हिं० सं० प० भा० ४, पृ० ७८८, ७८९, ७९०)

(२१) मैंने सब कुछ दे डाला

ईश्वर तुम्हें अच्छा यश प्रदान करें, यही मेरी सदैव इच्छा है। अब अप्रसिद्ध रागों की पाँचवीं क्रमिक पुस्तक शेष बची है। भगवान् ने चाहा तो वह भी पूर्ण करा लेगा। श्री रातांजनकर को इन सभी रागों की चीजें सिखा चुका हूँ। राजाभैया को भी नये तीस रागों की चीजें बताई हैं।

(श्री भास्करराव खांडेपारकर को सम्बोधित पत्र दि० १ फरवरी १९३२)

(२२) रुग्णशैया पर नहीं, कालेज में मरूँगा

कालेज (मैरिस म्यूजिक कालेज, लखनऊ) के प्रति अपने कर्तव्यों के बीच में शारीरिक व्याधियों को मैं कदापि न आने दूँगा। यहाँ रुग्णशैया पर मरने की अपेक्षा कालेज में मर जाना उत्तम होगा।.....काशी में देह त्यागने की मेरी बहुत इच्छा है, परन्तु इसका निर्णय तो भगवान् पर ही निर्भर है।

(राय उमानाथ बली को संबोधित पत्र दि० २८ जुलाई १९२८)

(२३) तुमसे मुझे बहुत आशा है

प्रिय बाबू, मुझे लगता है अब मेरी जीवन यात्रा क्रमशः अपने अंतिम चरण पर पहुँच चुकी है। अतः यह सारी नयी प्रतिक्रियाएँ (सूक्ष्मज्वर, रक्तचाप का बढ़ना, सिर में भिन्न-भिन्न आवाज होना, निद्रादोष) स्वाभाविक ही मानता हूँ। परन्तु भगवान् की दया से तुम्हारे जैसा दैदीप्यमान (मेधावी) शिष्य मुझे उसने दिया। तुम्हारे बारे में मेरी जो-जो भी आकांक्षाएँ हैं, उन्हें तुम निभाओगे इसमें मुझे कुछ भी संदेह नहीं।

(डा० श्री० ना० रातांजनकर को संबोधित पत्र दि० १६ फरवरी १९३३)

जो कर्तव्य था मैंने कर दिया। जहाँ-जहाँ से और जो-जो भी प्राप्त हुआ लिखकर सुरक्षित करता आया हूँ। मुझे दृढ़ विश्वास है इसका उपयोग करने वाला भविष्य में कोई न कोई निर्माण होगा। लिखते समय आवेश में आकर कभी-कभी कड़ी आलोचना भी कर गया हूँ। परन्तु विश्वास मानिए यह नितांत सत्य है कि किसी को भी क्लेश पहुँचाने की मेरी इच्छा नहीं थी।

अपने देशवासियों की गुणग्राहकता के कारण मैं इनका सदैव आभारी रहूँगा।

अन्त में मेरी इस कल्पना को मूर्तरूप देकर, इस ढलती उम्र में भी यह सब कार्य मेरे हाथों से पूर्ण करवाया, उस काशी विश्वेश्वर को नमस्कार करके आज्ञा लेता हूँ। जय जगदीश !

B. R. Kaul